

CHAPTER इक्कीस

गोपियों द्वारा कृष्ण के वेणुगीत की सराहना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार शरद ऋतु के आते ही कृष्ण ने वृन्दावन के मनोहर जंगल में प्रवेश किया और किस तरह उनकी बाँसुरी की ध्वनि सुनकर गोपियों ने प्रशंसा की।

ज्योंही भगवान् कृष्ण, भगवान् बलराम तथा उनके ग्वालसखा गौवें चराने के लिए जंगल में प्रविष्ट हुए, कृष्ण ने अपनी बाँसुरी बजानी प्रारम्भ कर दी। गोपियों ने जब यह मोहक वेणुगीत सुना तो वे समझ गईं कि कृष्ण जंगल में प्रवेश कर रहे हैं। तब उन्होंने कृष्ण की विविध लीलाओं का एक-दूसरे से बखान किया।

गोपियों ने कहा, “गौवों को चरागाह ले जाते समय कृष्ण को वंशी बजाते देखना आँखों की सर्वोच्च सिद्धि है। इस वंशी ने ऐसे कौन-से पुण्यकर्म किए हैं जिससे यह श्रीकृष्ण के अधरों का खुलकर अमृत-पान कर सकती है—यह वरदान हम गोपिकाओं को मिल पाना कितना कठिन है? कृष्ण की वंशी सुनकर मोर नाचने लगते हैं और इन्हें नाचते देखकर अन्य सारे प्राणी स्तम्भित रह जाते हैं। अपने अपने विमानों में आकाश-मार्ग से यात्रा करनेवाली देवियाँ कामदेव से पीड़ित हो जाती हैं और उनके वस्त्र शिथिल होने लगते हैं। इस वेणुगीत के अमृत को पीकर गौवों के कान खड़े हो जाते हैं, उनके बछड़े स्तम्भित खड़े रहते हैं और उनकी माताओं के थनों से पिया जा रहा दूध उनके मुख में ही रह जाता है। चिड़ियाँ ध्यानपूर्वक कृष्ण की बाँसुरी का गीत सुनती हुई अपनी आँखें बन्द करके वृक्षों की टहनियों में शरण ले लेती हैं। प्रवहमान नदियाँ कृष्ण के प्रति माधुर्य आकर्षण से विचलित होकर अपना बहना बन्द करके अपनी लहरों रूपी हाथों से कृष्ण के चरणों का आलिगन करने लगती हैं और बादल तो कृष्ण के सिर को धूप से बचाने के लिए छातों का काम करते हैं। शबर कन्याएँ भगवान् के चरणकमलों को अलंकृत करनेवाले लाल कुंकुम से रंजित घास को देखकर उसे सिन्दूर के बहाने अपने वक्षस्थलों तथा मुखों पर मलती हैं जिससे कामदेव द्वारा उत्पन्न उनके कष्ट दूर हो जाँय। गोवर्धन पर्वत भगवान् कृष्ण की पूजा हेतु दूब तथा विविध प्रकार के फल एवं कन्दमूल प्रदान करता है। सारे अचर प्राणी चरों के लक्षण प्रदर्शित करने लगे हैं और चरअचर बन गये हैं। ये सारी बातें अत्यन्त अद्भुत हैं।”

श्रीशुक उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।

न्यविशद्वायुना वातं स गोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार से; शरत्—शरद ऋतु का; स्वच्छ—साफ; जलम्—जलयुक्त; पद्म-आकर—कमलपुष्पों से लदे सरोवर से; सु-गन्धिना—मीठी गंध से; न्यविशत्—प्रवेश किया; वायुना—वायु द्वारा; वातम्—चलायमान्; स—सहित; गो—गौवें; गोपालकः—तथा ग्वालबाल; अच्युतः—अच्युत भगवान् ने।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह वृन्दावन का जंगल स्वच्छ शारदीय जलाशयों से पूरित था और स्वच्छ जलाशयों में खिले कमल पुष्पों की सुगंधवाली वायु से शीतल था। अपनी गौवों तथा ग्वालसखाओं समेत अच्युत भगवान् ने उस जंगल में प्रवेश किया।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्ग-

द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीधम् ।

मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः

सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कुसुमित—पुष्पित; वन-राजि—वृक्षों के समूहों में; शुष्मि—उन्मत्त; भृङ्ग—भौरें; द्विज—पक्षी; कुल—तथा समूह; घुष्ट—गुंजार करते; सरः—जलाशय; सरित्—नदियाँ; महीधम्—तथा पर्वत; मधु-पतिः—मधु के स्वामी (कृष्ण); अवगाह्य—प्रवेश करके; चारयन्—चराते हुए; गाः—गौवें; सह-पशु-पाल-बलः—ग्वालबालों तथा बलराम के संग; चुकूज—बजाया; वेणुम्—अपनी वंशी को।

वृन्दावन के सरोवर, नदियाँ तथा पर्वत पुष्पित वृक्षों पर मँडराते उन्मत्त भौरों तथा पक्षियों के समूहों से गुंजरित हो रहे थे। मधुपति (श्रीकृष्ण) ने ग्वालबालों तथा बलराम के संग उस जंगल में प्रवेश किया और गौवें चराते हुए वे अपनी वंशी बजाने लगे।

तात्पर्य : चुकूज वेणुम् शब्दों से यह ध्वनित होता है कि कृष्ण ने बड़ी ही कुशलतापूर्वक अपनी वंशी की ध्वनि तथा वृन्दावन के रंगबिरंगे पक्षियों के कलकूजन को मिला-जुला रखा था। इस तरह आकर्षक दैवी ध्वनि उत्पन्न हो रही थी।

तद्ब्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।

काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; ब्रज-स्त्रियः—ग्वालों के गाँव की स्त्रियाँ; आश्रुत्य—सुनकर; वेणु-गीतम्—वंशी का गीत; स्मर-उदयम्—कामदेव को उत्पन्न करनेवाला; काश्चित्—उनमें से कोई; परोक्षम्—एकान्त में; कृष्णस्य—कृष्ण के; स्व-सखीभ्यः—अपनी सखियों से; अन्ववर्णयन्—वर्णन किया।

जब ब्रजग्राम की तरुण स्त्रियों ने कृष्ण की वंशी का गीत सुना, जो काम उत्पन्न करनेवाला था, तो उनमें से कुछ स्त्रियाँ अपनी सखियों से एकान्त में कृष्ण के गुणों का बखान करने लगीं।

तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; वर्णयितुम्—वर्णन करने के लिए; आरब्धाः—प्रारम्भ करके; स्मरन्त्यः—स्मरण करती; कृष्ण-चेष्टितम्—कृष्ण की चेष्टाओं का; न अशकन्—असमर्थ थीं; स्मर-वेगेन—काम के वेग से; विक्षिप्त—विचलित; मनसः—मन वाली; नृप—हे राजा परीक्षित ।

गोपियाँ कृष्ण के विषय में बातें करने लगीं किन्तु जब उन्होंने कृष्ण के कार्यकलापों का स्मरण किया तो हे राजन्, काम ने उनके मनों को विचलित कर दिया जिससे वे कुछ भी न कह पाईं ।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्धान्वेणोरधरसुधयापूरयन्नोपवृन्दैर्
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

बर्ह—मोरपंख; आपीडम्—उनके सिर के अलंकरण स्वरूप; नट-वर—नर्तकों में श्रेष्ठ; वपुः—दिव्य शरीर; कर्णयोः—कानों में; कर्णिकारम्—कमल जैसा नीला फूल; बिभ्रत्—पहने हुए; वासः—वस्त्र; कनक—सोने जैसा; कपिशम्—पीलाभ; वैजयन्तीम्—वैजयन्ती नामक; च—तथा; मालाम्—माला, हार; रन्धान्—छेद; वेणोः—वंशी के; अधर—होंठों पर; सुधया—अमृत से; आपूरयन्—भरते हुए; गोप-वृन्दैः—ग्वालबालों द्वारा; वृन्दा-अरण्यम्—वृन्दावन की; स्व-पद—अपने चरणकमल के चिह्नों से; रमणम्—मुग्ध करनेवाले, रमणीय; प्राविशत्—प्रवेश किया; गीत—गाया जाता हुआ; कीर्तिः—उनका यश ।

अपने सिर पर मोरपंख का आभूषण, अपने कानों में नीले कर्णिकार फूल, स्वर्ण जैसा चमचमाता पीला वस्त्र तथा वैजयन्ती माला धारण किये भगवान् कृष्ण ने सर्वश्रेष्ठ नर्तक का दिव्य रूप प्रदर्शित करते हुए वृन्दावन के वन में प्रवेश करके अपने पदचिह्नों से इसे रमणीक बना दिया । उन्होंने अपने होंठों के अमृत से अपनी वंशी के छेदों को भर दिया और ग्वालबालों ने उनके यश का गान किया ।

तात्पर्य : गोपियों ने इस श्लोक में वर्णित कृष्ण के समस्त दिव्य गुणों का स्मरण किया । कृष्ण की वस्त्र धारण करने की कला तथा उनके कानों में लगे सुन्दर नीले फूलों ने गोपियों की प्रेम-माधुरी इच्छाओं को उत्तेजित कर दिया और जब कृष्ण ने अपने होंठों का अमृत अपनी बाँसुरी में उड़ेल दिया तो वे गोपियाँ उनके प्रेम में खो गईं ।

इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वेणु-रवम्—वंशी की ध्वनि; राजन्—हे राजा परीक्षित; सर्व-भूत—सारे जीवों के; मनः-हरम्—मनों को हरनेवाला; श्रुत्वा—सुनकर; व्रज-स्त्रियः—व्रज ग्राम में खड़ी स्त्रियों ने; सर्वाः—सभी; वर्णयन्त्यः—बखान करने में व्यस्त; अभिरेभिरे—एक-दूसरे का आलिंगन किया।

हे राजन्, जब व्रज की युवतियों ने सभी प्राणियों के मन को मोह लेने वाली कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी तो वे एक-दूसरे का आलिंगन कर-करके उसका बखान करने लगीं।

तात्पर्य : इति शब्द इसका सूचक है कि कृष्ण का स्मरण करके अवाक् हुई गोपियाँ अपनी चेतना वापस पाकर कृष्ण की वंशी की ध्वनि का अत्यंत हर्षपूर्वक बखान करने लगीं। जब कुछ गोपियाँ जोर-जोर से बोलने लगीं तो अन्यो को भी लगा कि उनके हृदयों में भी ऐसा ही आह्लादपूर्ण स्नेह का भाव है, अतः सभी गोपियाँ तरुण कृष्ण के माधुर्य प्रेम से अभिभूत होकर एक-दूसरे का आलिंगन करने लगीं।

श्रीगोप्य ऊचुः

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः

सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।

वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनवेणुजुष्टं

यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-गोप्यः ऊचुः—गोपियों ने कहा; अक्षण्वताम्—आँखवालों को; फलम्—फल; इदम्—यह; न—नहीं; परम्—अन्य; विदामः—हम जानती हैं; सख्यः—हे सखियो; पशून्—गौवों को; अनुविवेशयतोः—एक जंगल से दूसरे जंगल में प्रवेश कराकर; वयस्यैः—हमउम्र सखाओं के साथ; वक्त्रम्—मुख; व्रज-ईश—महाराज नन्द के; सुतयोः—दोनों पुत्रों के; अनु-वेणु-जुष्टम्—वंशी से लैस; यैः—जिससे; वा—अथवा; निपीतम्—प्रेरित; अनुरक्त—प्रेममय; कट-अक्ष—तिरछी दृष्टि, चितवन; मोक्षम्—छोड़ते हुए।

गोपियों ने कहा : सखियो, जो आँखें नन्द महाराज के दोनों पुत्रों के सुन्दर मुखमण्डलों का दर्शन करती हैं, वे निश्चय ही भाग्यशाली हैं। ज्योंही वे दोनों अपने मित्रों से घिरकर तथा गौवों को अपने आगे आगे करके जंगल में प्रवेश करते हैं, तो वे अपने मुख में अपनी वंशियाँ धारण करके वृन्दावनवासियों पर प्यार-भरी चितवन से देखते हैं। जो आँखोंवाले हैं उनके लिए हमारी समझ में देखने की इससे बड़ी अन्य कोई वस्तु नहीं है।

तात्पर्य : उपर्युक्त श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्य-चरितामृत (आदि लीला ४.१५५) से यह उद्धरण

लिया गया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इसकी टीका इस प्रकार की है : “गोपियाँ यह कहना चाहती थीं, “हे सखियो! यदि तुम इस संसार में पारिवारिक जीवन के बन्धनों में ही जकड़ी रही तो तुम्हें देखने को और क्या मिल सकेगा? स्रष्टा ने हमें ये आँखें दी हैं, तो हम सबसे अद्भुत दर्शनीय वस्तु कृष्ण को देखें।”

गोपियों को इस बात का भान था कि उनकी माताएँ या अन्य ज्येष्ठजन उनकी प्रेमपूर्ण बातें सुनकर अनुमति नहीं देंगे। इसलिए उन्होंने कहा—*अक्षण्वतां फलम्* “कृष्ण का दर्शन करना केवल हमारा ही नहीं अपितु सभी व्यक्तियों का लक्ष्य है।” दूसरे शब्दों में, गोपियों ने इंगित किया कि जब कृष्ण हरएक के लिए प्रेम के परम लक्ष्य हैं, तो फिर आध्यात्मिक हर्ष में वे क्यों उनसे प्रेम नहीं कर सकतीं?

आचार्यों के अनुसार एक अन्य गोपी ने यह तथा ८ से १९ तक के अन्य श्लोक कहे।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-

मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेशौ ।

मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां

रङ्गे यथा नटवरौ क्वच गायमानौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

चूत—आम का वृक्ष; प्रवाल—कोंपलों से युक्त; बर्ह—मोरपंख; स्तबक—फूल के गुच्छे; उत्पल—कमल; अब्ज—तथा कुमुदिनियों; माला—मालाओं से; अनुपृक्त—स्पर्श किया हुआ; परिधान—उनके वस्त्र; विचित्र—तरह तरह के; वेशौ—वेश में; मध्ये—बीच में; विरेजतुः—वे दोनों सुशोभित थे; अलम्—शान से; पशु-पाल—ग्वालबालों की; गोष्ठ्याम्—गोष्ठी के भीतर; रङ्गे—रंगमंच पर; यथा—जिस तरह; नट-वरौ—दो श्रेष्ठ नर्तक; क्वच—कभी; गायमानौ—गाते हुए।

तरह तरह के आकर्षक परिधानों के ऊपर अपनी मालाएँ डाले और मोरपंख, कमल, कमलिनी, आम की कोंपलों तथा पुष्पकलियों के गुच्छों से अपने को अलंकृत किये हुए कृष्ण तथा बलराम ग्वालबालों की टोली में शोभायमान हो रहे हैं। वे नाटक-मंच पर प्रकट होनेवाले श्रेष्ठ नर्तकों की तरह दिख रहे हैं और कभी कभी वे गाते भी हैं।

तात्पर्य : गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का स्मरण कर करके हर्ष-गीत गाती जा रही थीं। गोपियाँ उस जंगल में जाना चाहती थीं जहाँ कृष्ण लीला कर रहे थे और छिपकर वे लताओं के पत्तों के बीच में से उचक उचककर कृष्ण तथा बलराम के नृत्य तथा सखाओं के साथ उनके गायन को देखना चाहती थीं। यही उनकी आकांक्षा थी किन्तु न जा पाने के कारण वे प्रेम के वशीभूत होकर यह गीत गाने

लगीं ।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
 दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
 भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं हृदिन्यो
 हृष्यत्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्यः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गोप्यः—हे गोपियो; किम्—क्या; आचरत्—कर डाला; अयम्—यह; कुशलम्—शुभ कृत्य; स्म—निश्चय ही; वेणुः—बाँसुरी; दामोदर—कृष्ण की; अधर-सुधाम्—होंठ का अमृत; अपि—भी; गोपिकानाम्—गोपियों का; भुङ्क्ते—भोग करता है; स्वयम्—स्वतंत्र रूप से; यत्—जिसके लिए; अवशिष्ट—बचा हुआ; रसम्—केवल स्वाद; हृदिन्यः—नदियाँ; हृष्यत्—प्रसन्न होते हुए; त्वचः—जिनके शरीर; अश्रु—आँसू; मुमुचुः—गिरे; तरवः—वृक्ष; यथा—जिस तरह; आर्याः—बाप-दादे ।

हे गोपियो, कृष्ण के अधरों का मुक्तरूप अमृतपान करने और हम गोपियों के हेतु जिनके लिए ही वास्तव में यह अमृत है केवल स्वादमात्र छोड़ने के लिए इस वंशी ने कौन-से शुभ-कृत्य किये होंगे। वंशी के बाप-दादे बाँस के वृक्षों ने हर्ष के अश्रु गिराये होंगे। जिस नदी के तट पर यह वृक्ष उत्पन्न हुआ होगा उस मातारूपी नदी ने हर्ष का अनुभव किया होगा; इसीलिए ये खिले हुए कमल के फूल उसके शरीर के रोमों की भाँति खड़े हुए हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने चैतन्य-चरितामृत (अन्त्य १६.१४०) में इस श्लोक का जो अनुवाद दिया है, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव में अपनी सन्तान को भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी रूपी उच्च भक्त बना देखकर बाँस के वृक्ष रस बहाकर हर्ष के अश्रु निकालते हैं।

सनातन गोस्वामी ने एक और अर्थ भी दिया है। वृक्ष इसलिए चिल्ला रहे हैं क्योंकि वे कृष्ण के साथ न खेल पाने के कारण दुखी हैं। कोई यह आक्षेप कर सकता है कि वृन्दावन में वृक्षों को किसी ऐसी बात के लिए परिताप नहीं करना चाहिए जिसका मिल पाना असम्भव हो जिस तरह कोई भिक्षुक किसी राजा से मिलने से मना किये जाने पर शोक नहीं करता। किन्तु वृक्ष तो बुद्धिमान मनुष्यों जैसे ही हैं, जो अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त न कर सकने पर दुख उठाते हैं। अतः वृक्ष इसलिए चिख रहे हैं क्योंकि उन्हें कृष्ण के होंठों का अमृत नहीं मिल पा रहा।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं

यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
 गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं
 प्रेक्ष्याद्रिसान्धवरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

वृन्दावनम्—वृन्दावन; सखि—हे सखी; भुवः—पृथ्वी पर; वितनोति—फैलाता है; कीर्तिम्—यश को; यत्—क्योंकि; देवकी-सुत—देवकी-पुत्र के; पद-अम्बुज—चरणकमलों से; लब्ध—प्राप्त; लक्ष्मि—कोष; गोविन्द-वेणुम्—गोविन्द की वंशी; अनु—सुनने पर; मत्त—उम्मत; मयूर—मोरों का; नृत्यम्—जिसमें नृत्य होता है; प्रेक्ष्य—देखकर; अद्रि-सानु—पर्वतों की चोटियों पर; अवरत—स्तम्भित; अन्य—दूसरे; समस्त—सभी; सत्त्वम्—प्राणी।

हे सखी, देवकी पुत्र कृष्ण के चरणकमलों का कोष पाकर वृन्दावन पृथ्वी की कीर्ति को फैला रहा है। जब मोर गोविन्द की वंशी सुनते हैं, तो वे मस्त होकर नाचने लगते हैं और जब अन्य प्राणी उन्हें पर्वत की चोटी से इस तरह नाचते देखते हैं, तो वे सभी स्तब्ध रह जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि चूँकि इस श्लोक में वर्णित कार्यकलाप अन्य किसी जगत में नहीं होते इसलिए यह पृथ्वी अद्वितीय है। वस्तुतः पृथ्वी की कीर्ति अद्भुत वृन्दावन द्वारा फैलाई जाती है क्योंकि वह कृष्ण की लीलास्थली है।

देवकी शब्द माता यशोदा का भी द्योतक है जैसाकि बृहद्-विष्णु पुराण में कहा गया है—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च ।

अतः सख्यमभूत् तस्या देवक्या शौरि-जायया ॥

“नन्द की पत्नी के दो नाम थे—यशोदा तथा देवकी। इसलिए स्वाभाविक था कि नन्द की पत्नी शौरि (वसुदेव) की पत्नी देवकी से मित्रता करती।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कृष्णलीला की व्याख्या इस प्रकार की है : “वृन्दावन में मोर कृष्ण से प्रार्थना करते हैं ‘हे गोविन्द, हमें नचाइये।’ अतः कृष्ण अपनी वंशी बजाते हैं और वे उनके चारों ओर वृत्त बनाकर उनकी तान की लय के साथ नाचते हैं और उनके नृत्य के बीच खड़े होने पर वे भी गाते हैं और नाचते हैं। तब वे मोर जो उनके संगीत से पूरी तरह प्रसन्न हो जाते हैं, कृतज्ञतापूर्वक उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपने दिव्य पंख दे देते हैं। कृष्ण प्रसन्नतापूर्वक ये भेंटें स्वीकार करके उन्हें अपने सिर की पगड़ी पर धारण कर लेते हैं। मृग तथा कबूतर भी कृष्ण द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक मनोरंजन का आस्वादन करते हैं और अच्छी तरह से देख पाने के लिए वे पर्वतों की चोटियों पर एकत्र हो जाते हैं। जब वे इस आह्लादकारी कार्यक्रम का अवलोकन करते हैं, तो आनन्दविभोर हो उठते हैं।”

श्रील सनातन गोस्वामी की टीका है कि वृन्दावन में कृष्ण नंगे पाँव चलते हैं अतः पृथ्वी पर उनके चरणकमलों के सीधे चिह्न बन जाते हैं अतः वह दिव्य स्थल उस वैकुण्ठ से भी अधिक यशस्वी है जहाँ विष्णु खड़ाऊँ पहनते हैं।

धन्याः स्म मूढगतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णासाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

धन्याः—धन्य; स्म—निश्चय ही; मूढ-गतयः—अज्ञानी पशु योनि में जन्म लेकर; अपि—यद्यपि; हरिण्यः—हिरणी; एताः—ये; याः—जो; नन्द-नन्दनम्—महाराज नन्द के पुत्र को; उपात्त-विचित्र-वेशम्—अत्यन्त आकर्षक वस्त्र पहने; आकर्ण्य—सुनकर; वेणु-रणितम्—उनकी वंशी की ध्वनि; सह-कृष्ण-साराः—कृष्ण हिरणों (अपने पतियों) के साथ; पूजाम् दधुः—पूजा की; विरचिताम्—सम्पन्न किया; प्रणय-अवलोकैः—अपनी प्रेमपूर्ण चितवनों से।

ये मूर्ख हिरनियाँ धन्य हैं क्योंकि ये नन्द महाराज के पुत्र के निकट पहुँच गई हैं, जो खूब सजेधजे हुए हैं और अपनी बाँसुरी बजा रहे हैं। सचमुच ही हिरनी तथा हिरन दोनों ही प्रेम तथा स्नेह-भरी चितवनों से भगवान् की पूजा करते हैं।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्य-चरितामृत (मध्य १७.३६) से लिया गया है।

आचार्यों के अनुसार गोपियाँ इस प्रकार सोच रही थीं: “हिरनियाँ अपने पतियों के साथ कृष्ण के पास तक पहुँच सकती हैं क्योंकि हिरन के लिए कृष्ण ही स्नेह के परम लक्ष्य हैं। कृष्ण के प्रति स्नेह होने से वे कृष्ण द्वारा अपनी पत्नियों के आकृष्ट होने से प्रोत्साहित होते हैं और अपने गृहस्थ जीवन को धन्य मानते हैं। निस्सन्देह उन्हें यह देखकर प्रसन्नता होती है कि उनकी पत्नियाँ किस तरह कृष्ण की खोज में लगी हैं और वे उनके साथ होकर अपनी पत्नियों से याचना करते हैं कि वे भगवान् के पास चलें। दूसरी ओर हमारे पति हैं, जो कृष्ण से ईर्ष्या करते हैं और उनके प्रति भक्ति का अभाव होने से वे उनकी सुगन्धि से भी भागते हैं। अतः हमारे जीवन का क्या लाभ है ?

कृष्णां निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविविक्तगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—कृष्ण को; निरीक्ष्य—देखकर; वनिता—स्त्रियों के लिए; उत्सव—उत्सव; रूप—जिसका सौन्दर्य; शीलम्—तथा चरित्र; श्रुत्वा—सुनकर; च—तथा; तत्—उन्से; क्वणित—ध्वनित; वेणु—वंशी का; विविक्त—स्पष्ट; गीतम्—गीत; देव्यः—देवताओं की पत्नियाँ; विमान-गतयः—अपने विमानों में यात्रा करती; स्मर—कामदेव द्वारा; नुन्न—विचलित; साराः—जिनके हृदय; भ्रश्यत्—बिछलते हुए; प्रसून-कबराः—केश में बँधे फूल; मुमुहुः—मोहित हो गई; विनीव्यः—उनकी पेटियाँ (नीवी बन्धन) ढीले पड़ गये।

कृष्ण का सौन्दर्य तथा शील समस्त स्त्रियों के लिए उत्सव स्वरूप है। देवताओं की पत्नियाँ अपने पतियों के साथ विमानों में उड़ते हुए जब उन्हें देखती हैं और उनके गूँजते हुए वेणुगीत की ध्वनि सुनती हैं, तो उनके हृदय कामदेव द्वारा दहला दिये जाते हैं और वे इतनी मोहित हो जाती हैं कि उनके केशों से फूल गिर जाते हैं और उनकी करधनियाँ (पेटियाँ) ढीली पड़ जाती हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद भगवान् श्रीकृष्ण में टीका करते हैं, “ [यह श्लोक बतलाता है कि] कृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि ब्रह्माण्ड के कोने-कोने तक फैल गई। साथ ही, यह महत्त्वपूर्ण बात है कि गोपियाँ आकाश में उड़नेवाले विविध विमानों से परिचित थीं।”

वस्तुतः देवियाँ अपने पति देवताओं की गोद में बैठी हुई भी कृष्ण की वंशी की ध्वनि से उत्तेजित हो उठती थीं। इस तरह गोपियाँ सोचतीं कि उन्हें कृष्ण के प्रति माधुर्य आकर्षण के लिए दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए क्योंकि कृष्ण तो उन्हीं के गाँव का ग्वाला था अतएव उनका प्रेय तो हो ही सकता था। यदि देवियाँ तक कृष्ण के पीछे उन्मत्त हो सकती हैं, तो कृष्ण के ही गाँव की बेचारी पार्थिव गोपिकाएँ भला उनकी प्रेमभरी चितवन तथा उनकी वंशी की ध्वनि से अपने हृदय विजित होने से कैसे रोक सकती थीं ?

गोपियाँ यह भी विचार करतीं कि यद्यपि देवतागण अपनी स्त्रियों को कृष्ण के प्रति आकृष्ट होते देखते किन्तु वे ईर्ष्या नहीं करते थे। देवतागण वास्तव में अत्यन्त सुसंस्कृत एवं बुद्धिमान हैं अतएव जब वे विमान से उड़ते तो अपने साथ नियमित रूप से अपनी पत्नियों को ले जाते जिससे वे कृष्ण का दर्शन पा सकें। गोपियाँ सोचतीं, “दूसरी ओर हमारे पति हैं, जो हमसे ईर्ष्या रखते हैं। इसलिए तुच्छ हिरनियाँ तक हमसे अच्छी हैं और देवियाँ तो अत्यन्त भाग्यशालिनी हैं किन्तु हम बेचारी इन दोनों के बीच में होते हुए सर्वाधिक अभागिनी हैं।”

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-

पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।

शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थु-

गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; च—तथा; कृष्ण-मुख—कृष्ण के मुँह से; निर्गत—निकले; वेणु—वंशी के; गीत—गीत के; पीयूषम्—अमृत को; उत्तभित—ऊँचे उठाये हुए; कर्ण—कानों के; पुटैः—दोनों से; पिबन्त्यः—पीते हुए; शावाः—बछड़े; स्नुत—निकलता हुआ; स्तन—स्तनों से; पयः—दूध; कवलाः—कौर; स्म—निस्सन्देह; तस्थुः—शान्त खड़ी; गोविन्दम्—भगवान् कृष्ण को; आत्मनि—अपने मनों में; दृशा—अपनी दृष्टि से; अश्रु-कलाः—आँसुओं की झड़ी; स्पृशन्त्यः—छूते हुए।

गौवें अपने नलिकारूपी दोनों कानों को उठाये हुए कृष्ण के मुख से निकले वेणुगीत के अमृत का पान कर रही हैं। बछड़े अपनी माताओं के गीले स्तनों से निकले दूध को मुख में भरे-भरे स्थिर खड़े रहते हैं जब वे अपने अश्रुपूरित नेत्रों से गोविन्द को अपने भीतर ले आते हैं और अपने हृदयों में उनका आलिंगन करते हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्

कृष्णोक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।

आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्

शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

प्रायः—लगभग; बत—निश्चय ही; अम्ब—हे माता; विहगाः—पक्षीगण; मुनयः—मुनिगण; वने—जंगल में; अस्मिन्—इस; कृष्ण-ईक्षितम्—कृष्ण का दर्शन करने के लिए; तत्-उदितम्—उनके द्वारा उत्पन्न; कल-वेणु-गीतम्—वंशीवादन से उत्पन्न मधुर ध्वनि; आरुह्य—उठकर; ये—जो; द्रुम-भुजान्—वृक्षों की शाखाओं को; रुचिर-प्रवालान्—सुन्दर लताओं से युक्त; शृण्वन्ति—सुनते हैं; मीलित-दृशः—अपनी आँखें बन्द करके; विगत-अन्य-वाचः—अन्य सारी ध्वनियाँ रोककर।

अरी माई! कृष्ण का दर्शन करने हेतु इस जंगल में सारे पक्षी उड़कर वृक्षों की सुन्दर शाखाओं पर बैठ गये हैं। वे एकान्त में अपनी आँखें मूँदकर उनकी वंशी की मधुर ध्वनि को ही सुन रहे हैं और वे किसी अन्य ध्वनि की ओर आकृष्ट नहीं होते। सचमुच ये पक्षी महामुनियों की कोटि के हैं।

तात्पर्य : पक्षी मुनियों के ही समान हैं क्योंकि वे जंगल में रहते हैं, अपनी आँखें बन्द किये रहते हैं, मौन रहते हैं और अचल रहते हैं। महत्त्व की बात जो यहाँ कही गई है, वह यह है कि बड़े बड़े मुनि तक कृष्ण की वंशी की ध्वनि से उन्मत्त हो जाते हैं क्योंकि यह ध्वनि पूर्णतया आध्यात्मिक है।

रुचिर-प्रवालान् शब्द सूचित करता है कि कृष्ण के वेणुगीत के टकराने से वृक्षों की टहनियाँ तक भावविभोर हो जाती हैं। इन्द्र, ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु आदि देवता होने के कारण ब्रह्माण्ड-भर में

विचरण करते रहते हैं और उन्हें संगीत का विशद ज्ञान होता है फिर भी इन महापुरुषों ने वैसा संगीत नहीं सुना, न रचा जैसाकि कृष्ण की बाँसुरी से निकलता है। निस्सन्देह, सारे पक्षी इस आनन्दमयी ध्वनि से इतने विभोर हो जाते हैं कि वे आनन्द के मारे अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं और वृक्षों की टहनियों से चिपके रहते हैं जिससे गिर न पड़ें।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने व्याख्या की है कि कभी कभी गोपियाँ एक-दूसरे को *अम्ब* “माई” कहकर सम्बोधित करती थीं।

नद्यस्तदा तदुपधार्यं मुकुन्दगीत-

मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।

आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-

गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नद्यः—नदियाँ; तदा—तब; तत्—उसे; उपधार्यं—अनुभव करके; मुकुन्द—कृष्ण के; गीतम्—वेणुगीत को; आवर्त—भँवरों से; लक्षित—प्रकट; मनः—भव—अपनी दाम्पत्य इच्छा से; भग्न—टूटी; वेगाः—धाराएँ; आलिङ्गन—उनके आलिंगन से; स्थगितम्—जड़ हुई; ऊर्मि-भुजैः—लहर रूपी भुजाओं से; मुरारेः—मुरारी के; गृह्णन्ति—पकड़ लेती हैं; पाद-युगलम्—दोनों चरणकमल; कमल-उपहाराः—कमल फूलों की भेंटें लेकर।

जब नदियाँ कृष्ण का वेणुगीत सुनती हैं, तो उनके मन उन्हें चाहने लगते हैं जिससे नदियों की धाराओं का प्रवाह खंडित हो जाता है और जल क्षुब्ध हो उठता है और भँवर बनकर घूमने लगता है। तत्पश्चात् नदियाँ अपनी लहरों रूपी भुजाओं से मुरारी के चरणकमलों का आलिंगन करती हैं और उन्हें पकड़कर उनपर कमलपुष्पों की भेंटें चढ़ाती हैं।

तात्पर्य : यमुना तथा मानस-गंगा जैसी पवित्र नदियाँ वेणुगीत से मोहित हो जाती हैं और तरुण कृष्ण के प्रति माधुर्य आकर्षण से विचलित हो उठती हैं। गोपियों के कहने का प्रयोजन यह है कि जब विभिन्न प्रकार के जीव कृष्ण के प्रति माधुर्य प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं फिर माधुर्य-सम्बन्ध द्वारा कृष्ण की सेवा करने के निमित्त गोपियों की तीव्र इच्छा के लिए उनकी आलोचना क्यों की जाती है ?

दृष्ट्वातपे व्रजपशून्सह रामगोपैः

सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।

प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः

सख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

दृष्टा—देखकर; आतपे—सूर्य की भरी गर्मी में; व्रज-पशून्—व्रज के पालतू पशु; सह—साथ-साथ; राम-गोपैः—बलराम तथा ग्वालियों के; सञ्चारयन्तम्—चराते हुए; अनु—बारम्बार; वेणुम्—वंशी; उदीरयन्तम्—तेजी से बजाते हुए; प्रेम—प्रेमवश; प्रवृद्धः—बढ़ा हुआ; उदितः—उठकर; कुसुम-आवलीभिः—फूलों के समूहों से (ओस के कणों से युक्त); सख्युः—अपने मित्रों के लिए; व्यधात्—बनाया; स्व-वपुषा—अपने ही शरीर से; अम्बुदः—बादल ने; आतपत्रम्—छाता।

भगवान् कृष्ण बलराम तथा ग्वालबालों के संग में व्रज के समस्त पशुओं को चराते हुए ग्रीष्म की कड़ी धूप में भी निरन्तर अपनी बाँसुरी बजाते रहते हैं। यह देखकर आकाश के बादल ने प्रेमवश अपने को फैला लिया है। ऊँचे उठकर तथा फूल जैसी असंख्य जल की बूँदों से उसने अपने मित्र के लिए अपने ही शरीर को छाता बना लिया है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में कहा है, “कभी कभी शरद की झुलसाती धूप असह्य हो जाती थी अतः कृष्ण तथा बलराम एवं उनके मित्र जब अपनी अपनी वंशी बजाने में व्यस्त रहते तो दयावश उनके ऊपर आकाश में बादल प्रकट हो आते। ये बादल कृष्ण के साथ मैत्री स्थापित करने के लिए उनके सिरों के ऊपर सुखद छाते का काम करते।

पूर्णाः पुलिन्दा उरुगायपदाब्जराग-

श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।

तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन

लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

पूर्णाः—पूर्णतया संतुष्ट; पुलिन्दाः—शबर जाति की स्त्रियाँ; उरुगाय—भगवान् कृष्ण के; पद-अब्ज—चरणकमलों से; राग—लाल रंग का; श्री-कुङ्कुमेन—दिव्य कुंकुम चूर्ण से; दयिता—अपनी प्रेयसी के; स्तन—वक्षस्थल; मण्डितेन—अलंकृत हुए; तत्—उसके; दर्शन—देखने से; स्मर—कामदेव का; रुजः—कष्ट अनुभव करते हुए; तृण—घास के ऊपर; रूषितेन—अनुरक्त; लिम्पन्त्यः—पोतते हुए; आनन—मुख; कुचेषु—तथा स्तनों पर; जहुः—उन्होंने त्याग दिया; तत्—उस; आधिम्—मानसिक पीड़ा को।

वृन्दावन क्षेत्र की आदिवासी ललनाएँ लाल लाल कुंकुम चूर्ण से अंकित घास को देखकर कामोत्तेजित हो उठती हैं। कृष्ण के चरणकमलों के रंग से प्रदत्त यह चूर्ण मूलतः उनकी प्रेमिकाओं के स्तनों को अलंकृत करता था और जब उसे ही आदिवासी स्त्रियाँ अपने मुखों तथा स्तनों पर मल लेतीं हैं, तो उनकी सब चिंताएँ जाती रहती हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है : “मनचली आदिवासी कन्याएँ भी वृन्दावन की उस धूल को जो कृष्ण के चरणकमलों के स्पर्श से लाल रंग की हो गई थी अपने अपने मुखों तथा स्तनों में पोतकर पूर्ण संतुष्ट हो गईं। इन आदिवासी कन्याओं के स्तन

पूर्णविकसित थे और वे अत्यधिक कामुक भी थीं किन्तु जब उनके प्रेमी उनके स्तनों का स्पर्श करते तो वे अधिक संतुष्ट नहीं होती थीं। जब वे जंगल के बीच आईं तो उन्होंने देखा कि जब कृष्ण विचरण कर रहे थे तो वृन्दावन की कुछ पत्तियाँ तथा लताएँ भगवान् के चरणकमलों से गिरे हुए कुंकुम चूर्ण से लाल हो गई थीं। उनके चरणों को गोपियाँ अपने स्तनों पर रखती थीं जिससे वे भी कुंकुम चूर्ण से पुत गये थे किन्तु जब कृष्ण वृन्दावन जंगल में बलराम तथा अपने ग्वालमित्रों के साथ टहल रहे थे तो यह लाल चूर्ण वृन्दावन जंगल की भूमि पर गिर पड़ा। अतः कामुक आदिवासी कन्याओं ने कृष्ण की वंशी सुनने की प्रतीक्षा करते समय भूमि पर लाल कुंकुम देखा तो तुरन्त ही उन्होंने उसे उठाकर अपने अपने मुखों तथा स्तनों पर लेप लिया। इस तरह वे पूर्णतया सन्तुष्ट हो गईं जबकि इसके पूर्व जब उनके प्रेमी उनके स्तनों का स्पर्श करते थे तो वे संतुष्ट नहीं होती थीं। यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में आता है, तो समस्त भौतिक वासनाएँ तुरन्त तुष्ट हो जाती हैं।”

हन्तायमद्रिबला हरिदासवर्यो

यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।

मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्

पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हन्त—ओह; अयम्—यह; अद्रिः—पर्वत; अबलाः—हे सखियो; हरि-दास-वर्यः—भगवान् के सेवकों में से सर्वश्रेष्ठ; यत्—चूँकि; राम-कृष्ण-चरण—कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों के; स्पर्श—स्पर्श से; प्रमोदः—हर्षित; मानम्—आदर; तनोति—प्रदान करता है; सह—साथ; गो-गणयोः—गौवें, बछड़े तथा ग्वालबाल के; तयोः—उन दोनों (श्रीकृष्ण तथा बलराम) को; यत्—क्योंकि; पानीय—पेय जल के साथ; सूयवस—अत्यन्त मुलायम घास; कन्दर—गुफाएँ; कन्द-मूलैः—तथा खाद्य कन्दों से।

यह गोवर्धन पर्वत समस्त भक्तों में सर्वश्रेष्ठ है। सखियो, यह पर्वत कृष्ण तथा बलराम के साथ ही साथ उनकी गौवों, बछड़ों तथा ग्वालबालों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं—पीने का पानी, अति मुलायम घास, गुफाएँ, फल, फूल तथा तरकारियों—की पूर्ति करता है। इस तरह यह पर्वत भगवान् का आदर करता है। कृष्ण तथा बलराम के चरणकमलों का स्पर्श पाकर गोवर्धन पर्वत अत्यन्त हर्षित प्रतीत होता है।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्य-चरितामृत (मध्य १८.३४) से लिया गया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने गोवर्धन पर्वत के ऐश्वर्य की विवेचना इस प्रकार की है : पानीय

गोवर्धन पर्वत के झरनों से प्राप्त सुगंधित शीतल जल का द्योतक है, जिसे कृष्ण तथा बलराम पिया करते थे और जिससे अपने पाँव और मुख धोया करते थे। गोवर्धन पर्वत शहद, आम का रस तथा पीलू रस जैसे अन्य पेय भी प्रदान करता है। *सूयवस दूर्वा* अर्थात् दूब (घास) को बतलाता है, जिससे *अर्घ्य* की धार्मिक भेंट दी जाती है। गोवर्धन पर्वत में घास भी होती है, जो सुगंधित, मुलायम तथा गौवों की वृद्धि एवं उनमें दूध बढ़ाने के लिए लाभप्रद है। इस तरह यह घास आध्यात्मिक पशुओं को खिलाने के काम आती है। कन्दर गुफाओं का सूचक है जहाँ कृष्ण, बलराम तथा उनके संगी खेलते, बैठते और लेटते थे। ये गुफायें तब आनन्द देती हैं जब या तो बहुत गर्मी हो, या सर्दी हो या फिर वर्षा हो रही हो। गोवर्धन पर्वत में खाने के मुलायम कन्द, शरीर सजाने के रत्न, बैठने के लिए समतल स्थान तथा चिकने पत्थर, चमकीले जल और अन्य प्राकृतिक वस्तुओं के रूप में दर्पण तथा दीपक प्रदान करता है।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-

वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरुणां

निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

गा:— गौवें; गोपकैः— ग्वालबालों के साथ; अनु-वनम्— प्रत्येक जंगल तक; नयतोः— ले जानेवाले; उदार— अत्यन्त उदार; वेणु-स्वनैः— वंशी की ध्वनि से; कल-पदैः— मधुर स्वर से; तनुभृत्सु— जीवों से; सख्यः— हे सखियों; अस्पन्दनम्— स्पन्दन का अभाव; गति-मताम्— गति करनेवाले जीवों का; पुलकः— हर्ष; तरुणम्— वृक्षों का; निर्योग-पाश— गौवों के पिछले पाँवों को बाँधने के लिए प्रयुक्त रस्सी, नोई; कृत-लक्षणयोः— लक्षणों वालों का; विचित्रम्— आश्चर्यजनक।

हे सखियों, जब कृष्ण तथा बलराम अपने ग्वालमित्रों के साथ जंगल से होकर अपनी गौवें लेकर गुजरते हैं, तो वे अपने साथ दूध दोहन के समय गौवों की पिछली टाँगें बाँधने के लिए नोई लिये रहते हैं। जब भगवान् कृष्ण अपनी वंशी बजाते हैं, तो मधुर संगीत से चर प्राणी स्तब्ध रह जाते हैं और अचर वृक्ष आनन्दातिरेक से हिलने लगते हैं। निश्चय ही ये बातें अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम कभी गौवों की नोइयाँ अपने सिरों में लपेट लेते और कभी कंधों पर लटका लेते। इस तरह वे ग्वालबालों के समस्त उपकरणों से सुशोभित होते थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की व्याख्या है कि कृष्ण तथा बलराम पीताम्बर की नोइयाँ बनाते जिनके दोनों सिरों पर

मोतियों के गुच्छे रहते थे। वे इन रस्सियों को अपने दुपट्टे के चारों ओर लपेट लेते और इस तरह ये रस्सियाँ विचित्र अलंकरण बन जातीं।

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।

वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधा:—ऐसा; भगवतः—भगवान् का; या:—जो; वृन्दावन-चारिणः—वृन्दावन के जंगल में घूमनेवाला; वर्णयन्त्यः—वर्णन करती हुई; मिथः—परस्पर; गोप्यः—गोपियों ने; क्रीडा:—लीलाएँ; तत्-मयताम्—उनका भावमय ध्यान; ययुः—प्राप्त किया।

इस तरह वृन्दावन के जंगल में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा विचरण से सम्बन्धित क्रीडामयी लीलाओं को एक-दूसरे से कहती हुई गोपियाँ उनके विचारों में पूर्णतया निमग्न हो गईं।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद की टीका है, “यह कृष्णभावनामृत का पूर्ण उदाहरण है, जिससे किसी न किसी तरह कृष्ण के विचारों में निमग्न रहा जा सकता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण गोपियों के आचरण में उपस्थित होता है इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया कि भगवान् की पूजा करने की सर्वश्रेष्ठ विधि गोपियों की विधि है। गोपियाँ किसी उच्च ब्राह्मण, या क्षत्रिय परिवार में उत्पन्न नहीं हुई थीं। वे वैश्य कुल में उत्पन्न थीं जो कोई बड़ा व्यापारिक वर्ग नहीं था अपितु ग्वालों का परिवार था। वे ठीक से शिक्षित नहीं थीं यद्यपि उन्होंने वैदिक ज्ञान में सिद्ध ब्राह्मणों से सभी प्रकार का ज्ञान सुन रखा था। गोपियों का एकमात्र उद्देश्य कृष्ण के विचारों में सदैव निमग्न रहना था।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “गोपियों द्वारा कृष्ण के वेणुगीत की सराहना” नामक इक्कीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।